



छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर
द्वितीय अपील क्रमांक 411/2009

1. गुडा, पिता मंगलू, उम्र लगभग 45 वर्ष,
2. जगदेव, पिता हगरू, उम्र लगभग 40 वर्ष,
दोनों जाति उराँव, निवासी ग्राम कमारिमा, तहसील
बगीचा, जिला जशपुर (छ.ग.)
3. जगनू (मृत) द्वारा विधिक वारिसान
(i) विजयराम, पिता स्व. जगनू, उम्र लगभग 25 वर्ष,
(ii) अमित कुमार, उम्र लगभग 18 वर्ष, पिता स्व. जगनू,
दोनों निवासी ग्राम कमारिमा, पोस्ट कमारिमा, तहसील बगीचा,
जिला जशपुर (छ.ग.)

(बचाव पक्ष)
(प्रतिवादीगण)
----- अपीलार्थीगण

विरुद्ध

1. रामचंद, पिता घनश्याम, उम्र लगभग 35 वर्ष,
2. हरिकृष्ण, पिता घनश्याम, उम्र लगभग 32 वर्ष,
3. भागवत, पिता घनश्याम, उम्र लगभग 30 वर्ष,

सभी जाति अहीर, निवासी कमारिमा, तहसील बगीचा, जिला जशपुर (छ.ग.)

(वादीगण)
(अपीलार्थीगण)

4. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा कलेक्टर, जशपुर (छ.ग.)

(प्रतिवादी)
----- उत्तरवादी



अपीलार्थी/प्रतिवादी के लिए :-

श्री जे.के. सक्सेना, अधिवक्ता।

उत्तरवादी क्रमांक 1 से 3/वादीगण के लिए:-

श्री ए.एन. पांडे, अधिवक्ता।

उत्तरवादी क्रमांक 4/राज्य के लिए:-

श्री रवि कुमार भगत, उप शासकीय अधिवक्ता।

माननीय श्री न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

बोर्ड पर निर्णय

25/11/2020

1. प्रतिवादीगण/अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत यह द्वितीय अपील निम्नलिखित विधिक

प्रश्न तैयार करके सुनवाई हेतु स्वीकार की गई: -

"क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में वाद का डिक्री न्यायोचित है या इस तथ्य की अनदेखी किया गया है कि उप संभागीय अधिकारी, बगीचा द्वारा छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 की धारा 170(बी) के अंतर्गत दिनांक 09.12.1996 को पारित आदेश (प्र.डी-1) को वादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी तथा वह आदेश अंतिम हो गया है तथा इस प्रकार अवैधानिकता की गई है?"

(सुविधा के लिए, पक्षकारों को उनके दर्जे तथा विचारण न्यायालय के समक्ष

वाद में दी गई रैंकिंग के अनुसार संदर्भित किया जाएगा।)

2. वाद की संपत्ति मूल रूप से प्रतिवादी क्रमांक 1 तथा 2 के पिता क्रमशः मंगलू तथा हगरू के पास थी। उन्होंने वादीगण के पिता घनश्याम के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 1-5-1958 प्र.पी-1 द्वारा वाद संपत्ति बेची। तत्पश्चात, प्रतिवादीगण के कहने पर, छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 (संक्षेप में,



'संहिता') की धारा 170-बी के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ की गई और अंततः, अनुविभागीय अधिकारी के आदेश दिनांक 9-12-1996 प्र.डी-1 द्वारा संहिता की धारा 170-बी के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में बिक्री को शून्य घोषित कर दिया गया। इसके बाद, वादीगण ने 12-9-2006 को वाद प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया कि वे वाद भूमि के स्वामित्व धारक और कब्जा धारक हैं और 9-12-1996 को अनुविभागीय अधिकारी द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है, क्योंकि छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 दिनांक 2-10-1959 को लागू हुई, जबकि लेन-देन 1-5-1958 का है, इसलिए अनुविभागीय अधिकारी संहिता की धारा 170-बी के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए लेन-देन को शून्य घोषित नहीं कर सकते थे और इसलिए उनके पक्ष में स्वामित्व की घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री दी जानी चाहिए।

3. मुकदमे का विरोध करते हुए प्रतिवादीगण ने लिखित बयान दाखिल किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया कि सिविल मुकदमे में अनुविभागीय अधिकारी के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है और उक्त आदेश को रद्द करने की मांग करने वाली कोई घोषणा नहीं की गई है, इसलिए, अनुविभागीय अधिकारी का आदेश अंतिम हो गया है और राजस्व न्यायालय के पास मामले का अनन्य क्षेत्राधिकार है और संहिता की धारा 257 (ठ-1) के मद्देनजर सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित है, ऐसे में मुकदमा खारिज किए जाने योग्य है।
4. रिकॉर्ड पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों की सराहना करते हुए विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज कर दिया और कहा कि अनुविभागीय अधिकारी का



दिनांक 9-12-1996 का आदेश (प्र.डी-1) अंतिम हो गया है क्योंकि इसे किसी भी सक्षम राजस्व अधिकारी के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया गया है। वादीगण द्वारा अपील प्रस्तुत किए जाने पर प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पलटते हुए कहा कि संहिता 2-10-1959 से प्रभावी हुई, जबकि लेन-देन 1-5-1958 को किया गया था, इसलिए अनुविभागीय अधिकारी का आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है और इस प्रकार, उसे चुनौती दिए जाने की आवश्यकता नहीं है और वादीगण के पक्ष में स्वामित्व की घोषणा एवं स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री प्रदान की गई, जिसके विरुद्ध प्रतिवादीगण द्वारा यह द्वितीय अपील प्रस्तुत की गई है, जिसमें विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किया गया है, जिसे इस निर्णय के आरंभिक कण्डिका में प्रस्तुत किया गया है।

5. श्री जे.के. सक्सेना, अपीलार्थीगण/प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह मानना बिल्कुल अनुचित है कि अनुविभागीय अधिकारी के पास दिनांक 9-12-1996 (प्र.डी-1) का आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, अनुविभागीय अधिकारी के आदेश को चुनौती नहीं दी गयी है और भले ही यह माना जाता है कि यह अधिकार क्षेत्र के बिना है, फिर भी वादी ने विक्रय विलेख को रद्द करने की मांग नहीं की है, इसे शून्य घोषित करने की मांग नहीं की है और इसके अभाव में, अनुविभागीय अधिकारी का आदेश अंतिम हो गया है और इस तरह, प्रथम अपीलीय न्यायालय वाद का फैसला नहीं कर सकता था।



6. श्री ए.एन. प्रतिवादी क्रमांक 1 से 3/वादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री. पी.के. पाण्डेय ने प्रस्तुत किया कि चूंकि संहिता 2-10-1959 से प्रभावी हुई तथा प्र. पी-1 के अनुसार आक्षेपित लेनदेन दिनांक 1-5-1958 का है, अतः संहिता में निहित प्रावधान अर्थात् धारा 170-बी लागू नहीं होंगे, ऐसे में अनुविभागीय अधिकारी का दिनांक 9-12-1996 का आदेश पूर्णतः अधिकारिता से बाहर तथा विधि के प्राधिकार से रहित था, अतः उसे रद्द करने की मांग करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि शून्य आदेश को अपास्त करने की आवश्यकता नहीं है, ऐसे में द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है।
7. मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा उनके उपरोक्त प्रतिद्वन्द्वात्मक तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का भी अत्यंत सावधानी से अध्ययन किया है।
8. निःसंदेह, वादीगण के पिता घनश्याम ने प्रतिवादीगण क्रमांक 1 व 2 के पिता से 1-5-1958 को प्र.पी-1 के तहत वाद संपत्ति खरीदी थी तथा उसका कब्जा प्राप्त किया था, तत्पश्चात, प्रतिवादीगण के कहने पर, संहिता की धारा 170-बी के तहत कार्यवाही शुरू की गई तथा भूमि को वापस करने का आदेश अनुविभागीय अधिकारी द्वारा 9-12-1996 को प्र.डी-1 के तहत प्रतिवादीगण के पक्ष में पारित किया गया। संहिता 2-10-1959 से लागू हुई और उक्त संहिता की धारा 170-बी केवल 2-10-1959 से 24-10-1980 तक के लेन-देन के लिए लागू होगी।



9. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यादराम (मृत) द्वारा विधिक वारसान श्रीमती यमुना बाई और अन्य बनाम छ.ग. राज्य और अन्य के माध्यम से यह अच्छी तरह से स्थापित किया है कि छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता 1959 की धारा 170-बी, केवल 2-10-1959 और 24-10-1980 के बीच किए गए लेन-देन पर लागू होगी। रिपोर्ट के कण्डिका 17 और 19 में निम्नानुसार कहा गया है: -

“17. वर्तमान मामले में, विधि को सीमित पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ संशोधित किया गया है। संशोधित संहिता की धारा 170-बी का सरल वाचन 2-10-1959 से 24-10-1980 के बीच किए गए लेन-देन को कवर करता है, न कि 2-10-1959 से पहले किए गए लेन-देन को। संहिता की धारा 170-बी की भाषा बिना त्रुटि के आर स्पष्ट है और विधानमंडल द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों को कोई अन्य अर्थ देने के लिए व्याख्या के नियमों को लागू करना स्वीकार्य नहीं है, जो स्वाभाविक रूप से उससे निकलते हैं। यदि संहिता की धारा 170-बी के स्पष्ट शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि उसका अर्थ उसमें लिखे अर्थ से भिन्न हो, अर्थात् यदि धारा को 2-10-1959 से पूर्व किए गए लेन-देन पर लागू माना जाए, जबकि धारा में यह स्पष्ट प्रावधान है कि यह 2-10-1959 को और उसके पश्चात किए गए लेन-देन पर लागू होगी, तो ऐसी व्याख्या से नए दायित्व और कर्तव्य उत्पन्न होंगे, जो निहित अधिकारों में बाधा डालेंगे, जिन्हें सामान्यतः व्याख्या का सहारा लेकर नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए संहिता की धारा 170-बी के स्पष्ट और सुस्पष्ट शब्दों के आधार पर हम इस मत के अतिरिक्त किसी अन्य मत से सहमत नहीं हो सकते कि यह केवल 2-10-1959 और 24-10-1980 के बीच किए गए लेन-देन पर ही लागू होती है।

19. संहिता की धारा 170-बी की प्रयोज्यता के संबंध में हमारे द्वारा बनाई गई विधिक राय के मद्देनजर, हम संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते हैं कि संहिता की धारा 170-बी और अधिनियम क्रमांक 15, 1980 (दिनांक 24-10-1980 से प्रभावी) के प्रावधान, गैर-आदिवासी द्वारा भूमि पर अधिकार के हस्तांतरण/अर्जन से



संबंधित लेनदेन के संबंध में लागू होंगे, जो शीर्षक या हित के ऐसे अधिग्रहण या हस्तांतरण से पहले, जनजाति के सदस्य के स्वामित्व में थी, जिसे छत्तीसगढ़ भूमि राजस्व संहिता, 1959 के प्रारंभ से यानी 2-10-1959 से संशोधन अधिनियम, 1980 के प्रारंभ तक यानी 24-10-1980 तक संहिता की धारा 165 की उपधारा (6) के तहत आदिवासी घोषित किया गया है।

10. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 170-बी केवल 2-10-1959 और 24-10-1980 के बीच किए गए लेन-देन पर लागू होती है और जिस व्यक्ति ने 2-10-1959 और 24-10-1980 के बीच लेन-देन के अनुसरण में भूमि पर कब्जा किया है, उसे दो साल के भीतर यह जानकारी प्रस्तुत करनी होगी कि वह मुकदमे वाली भूमि पर कब्जा कैसे कर पाया, अन्यथा संहिता की धारा 170-बी में बताए गए परिणाम भुगतने होंगे। इस प्रकार, इस मामले में, अनुविभागीय अधिकारी के पास धारा 170-बी के तहत कार्यवाही शुरू करने का अधिकार नहीं था, क्योंकि प्र.पी-1 के तहत विचाराधीन लेन-देन 2-10-1959 से पहले का है, यानी 1-5-1958 (प्र.पी-1)।
11. प्रतिवादीगण का तर्क है कि वादी ने सवाल नहीं उठाया और यह घोषणा नहीं मांगी कि अनुविभागीय अधिकारी का आदेश शून्य है, इसलिए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा डिक्री नहीं दी जा सकती थी।
12. अब, सवाल यह होगा कि क्या आदेश, जो शुरू से ही शून्य है, को रद्द करने की आवश्यकता है?
13. महादेव प्रसाद सिंह एवं अन्य बनाम राम लोचन एवं अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि यदि बिक्री शून्य है, तो उसे रद्द करने की



आवश्यकता नहीं है। आगे यह माना गया कि न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र के बिना पारित किया गया निर्णय शून्य है और जब भी इसे लागू करने या इस पर भरोसा करने की मांग की जाती है, तब भी निष्पादन के चरण में और यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी इसकी अमान्यता स्थापित की जा सकती है। रिपोर्ट के पैरा 33, 34 और 35 में निम्नानुसार देखा गया: -

"33. एक बार जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि प्रश्नगत बिक्री पूरी तरह से शून्य और निरर्थक थी, तो अपीलकर्ताओं का वैकल्पिक तर्क कि मुकदमा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 द्वारा वर्जित है, अस्तित्व में नहीं आता है।

34. यह अनियमित या शून्यकरणीय बिक्री का मामला नहीं है जो तब तक जारी रहती है जब तक इसे अलग नहीं रखा जाता है, बल्कि एक बिक्री का मामला है जो पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना थी। यह कानून की नज़र में अमान्य था। ऐसी शून्यता को, उसके स्वभाव से ही, अपास्त नहीं किये जाने की आवश्यकता है।

35. जैसा कि इस न्यायालय ने किरण सिंह बनाम चमन पासवान में बताया है:

"... यह एक बुनियादी सिद्धांत है, अच्छी तरह से स्थापित है कि अधिकार क्षेत्र के बिना न्यायालय द्वारा पारित डिक्री शून्य है; और इसकी अमान्यता तब भी स्थापित की जा सकती है जब भी इसे लागू करने या इस पर भरोसा करने की कोशिश की जाती है, निष्पादन के चरण में भी और यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी।"

14. प्रेम सिंह एवं अन्य बनाम बीरबल एवं अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने माना है कि जब कोई दस्तावेज वैध होता है, तो उसके निरस्तीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। जब कोई दस्तावेज आरंभ से ही शून्य होता



है, तो उसे निरस्त करने के लिए डिफ्री की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह कानून की दृष्टि में अमान्य है, क्योंकि वह शून्य होगा।

15. इस स्तर पर, अपीलार्थीगण/प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री सक्सेना ने प्रस्तुत किया कि राजस्व न्यायालय को संहिता की धारा 257(ठ-1) के आधार पर संहिता की धारा 170-बी के मामले में अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त है और सिविल न्यायालय को इस मुद्दे पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। यह तर्क इस न्यायालय द्वारा धनजीराम एवं अन्य बनाम प्रवीण कुमार एवं अन्य के मामले में दिए गए निर्णय के मद्देनजर खारिज किए जाने योग्य है, जिसमें इस न्यायालय ने धुलाभाई बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और धूमनिया बनाम हरिसिंह एवं अन्य के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए माना है कि सिविल न्यायालय यह जांच कर सकता है कि न्यायिक प्रक्रिया के बुनियादी मौलिक सिद्धांतों का आदेश पारित करते समय सक्षम प्राधिकारी द्वारा पालन किया गया है या नहीं और निम्नानुसार माना गया है: -

“12. उपरोक्त विधिक स्थिति को देखते हुए, राजस्व अधिकारियों द्वारा संहिता की धारा 170-ए और 170-बी के अंतर्गत पारित आदेशों के विरुद्ध संहिता की धारा 257(1)(ठ-1) के अंतर्गत बनाए गए प्रतिबंध के बावजूद, उनके अनन्य क्षेत्राधिकार में संहिता की धारा 170-ए और 170-बी के अंतर्गत पारित आदेशों के बावजूद भी, सिविल न्यायालय के पास मामले को सुनने और विचार करने का अधिकार था, इस सीमा तक कि संबंधित अधिकारी ने जांच करते समय और आदेश पारित करते समय निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन किया है या नहीं। लेकिन ऐसा अधिकार क्षेत्र सीमित है, जैसा कि धुलाभाई (सुप्रा) के मामले में निर्धारित किया गया है। सिविल न्यायालय ऐसे राजस्व अधिकारियों द्वारा उनके अनन्य क्षेत्राधिकार के अंतर्गत गुण-दोष



के आधार पर तय किए गए प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता। इस प्रकार, यह माना जाता है कि सिविल न्यायालय के पास पूर्वोक्त सीमा तक ऐसे वाद को सुनने का अधिकार है।”

16. अंततः मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, यह स्पष्ट है कि चूंकि विचाराधीन लेन-देन 1-5-1958 (प्र.पी-1) का है और संहिता 2-10-1959 से लागू हुई, इसलिए, अनुविभागीय अधिकारी को संहिता की धारा 170-बी के तहत आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं होगा क्योंकि वह प्रावधान प्रतिवादीगण के कहने पर लागू नहीं होगा और इसलिए अनुविभागीय अधिकारी द्वारा 9-12-1996 (प्र.डी-1) को पारित आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र और कानून के अधिकार के बिना है और यह शुरू से ही शून्य है, इसलिए इस पर विशेष रूप से सवाल उठाने की आवश्यकता नहीं थी और उस आदेश को रद्द करने के लिए कहने की आवश्यकता नहीं थी। इस मामले में, पक्षकार संहिता की धारा 170-बी की प्रयोज्यता के मुद्दे से अच्छी तरह परिचित थे, क्योंकि विचारण न्यायालय ने विशेष रूप से संहिता की धारा 170-बी के तहत अनुविभागीय अधिकारी के आदेश दिनांक 9-12-1996 (प्र.डी-1) को देखा था, जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सही रूप से पलट दिया है, यह मानते हुए कि संहिता की धारा 170-बी संहिता के लागू होने से पहले दर्ज किए गए लेनदेन पर लागू नहीं होगी, अर्थात् 2-10-1959 और प्रतिवादीगण को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है, खासकर तब जब इस मामले में वादी ने स्पष्ट रूप से दलील दी है कि संहिता 2-10-1959 से लागू हुई और लेनदेन उससे पहले का है, इसलिए, संहिता के प्रावधान लागू नहीं होंगे और





प्रतिवादी क्रमांक 1 से 3/वादीगण द्वारा दायर तत्काल मुकदमे में मुद्दे की जांच करने से सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र वर्जित नहीं है।

17. उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता नहीं दिखती, बल्कि विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पलटना और वादीगण के पक्ष में डिक्री प्रदान करना उचित है। कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया गया है।
18. परिणामस्वरूप, दूसरी अपील खारिज की जाने योग्य है और तदनुसार खारिज की जाती है। पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करना होगा।
19. तदनुसार अपीलीय डिक्री तैयार की जाए।



एसडी/-
(संजय के. अग्रवाल)
न्यायाधीश